प्रवासी लेखकों को अन्थोलॉजी और आलोचना ग्रन्थ पर कार्य करना चाहिये :

सुरेश चंद्र शुक्ल / डॉ अनुपमा तिवारी

डॉ॰ अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय, बंगलोर
फोन – 8886995593/8142623426
ईमेल – anupama.tiwari@alliance.edu.in

(नार्वे के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सुरेशचन्द्र शुक्ल जी एक सफल पत्रकार और समाजसेवी भी हैं। विगत चालीस वर्षों से हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रचार – प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। विगत 32 वर्षों से स्पाइल – दर्पण नामक द्विभाषीय, द्वैमासिक पत्रिका का ओस्लो नार्वे से प्रकाशन व सम्पादन कर रहे हैं। इस पत्रिका के माध्यम से आप भारत और नार्वे के बीच सांस्कृतिक और साहित्यिक सत्ते का निर्माण करने में सफल रहे हैं। प्रस्तुत है सुरेश चंद्र शुक्ल जी से अनुपमा तिवारी की बात – चीत के कुछ अंश)

अनुपमा तिवारी : पिछले दो दशक से प्रवासी साहित्य का आलोक हिंदी साहित्य में अपनी आभा बिखेर रहा है। प्रवासी साहित्य की प्रासांगिकता के बारे में आपकी क्या राय है?

सुरेश चंद्र शुक्ल : प्रवासी साहित्य अनेक दशकों से अपनी आभा बिखेर रहा है। चार दशक पहले मैं ओस्लो नार्वे में आकर बसा था और आते ही हिंदी की पत्रिका परिचय का सम्पादन करने लगा था। परिचय का संपादन मैंने सन 1980 से 1985 तक किया था। भारत में रहकर जो साहित्य सृजन कर रहे हैं, उनकी सभी परिस्थितियाँ बड़ी अनुकूल हैं। अपनी भाषा और राष्ट्र के लिए अपने देश में रहकर जो साहित्य सृजन करते हैं उनका योगदान बहुमूल्य है। लेकिन इसके विपरीत विदेशों में रहकर अपने भारत की संस्कृति के समग्र विकास को लेकर भी प्रवासी साहित्यकार सृजन कर रहे हैं। ये प्रवासी साहित्यकार प्रतिकूल परिस्थितियों में भी साहित्य सृजन कर रहे हैं। ऐसे प्रवासी साहित्यकारों का अवदान अकथनीय है क्योंकि अनुकूल परिस्थियों में रहकर अपने घर,परिवार, समाज और राष्ट्र के बीच अपनी भाषा और संस्कृति का चिंतन करना तत्पश्चात उसका सृजन करना अत्यंत सरल होता है। लेकिन जब अपने देश से दूर हजारों किलोमीटर की दूरी पर जब अपने देश का चिंतन करते हैं। निस्संदेह बड़ा कठिन होता है पर बाहर से सब साफ़-साफ़ दिखाई देता है। इसीलिये चाहे वह प्रवासी साहित्यकार है अथवा उनका साहित्य, हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसा साहित्यकार और उसके द्वारा रचित साहित्य निस्संदेह राष्ट्र की एक महान धरोहर तो है ही, अपितु यह असाधारण उपलब्धि भी है। विकटतम परिस्थितयों में अपनी भाषा और राष्ट्र को न भूलना अपितु उसका वर्णन भी करना उसकी रचना में चार चाँद लगा देते हैं। प्रवासी साहित्य में राष्ट्रीय से लेकर वैश्विक दृष्टि से भी यह असाधारण अवदान है। हमारा भारतीय जीवन दर्शन और संस्कृति ऐसे उदाहरणों से भरपूर है।

राष्ट्र के सामान्य प्रहरियों (प्रवासी साहित्यकारों) ने या शुभचिंतकों ने प्रदेश में जाकर अपने देश की मिट्टी के लगाव को नहीं छोड़ा और सामान्य से असाधारण नायक बन गये। आपका ध्यान मैं विश्व संस्कृति के महानायक श्री राम की ओर ले जाना चाहता हूँ, जिन्होंने चौदह वर्ष के वनवास पर जाते समय जब शरीर पर वलकल वस्त्र धारण किये और युवराज से प्रवासी बन गये। प्रस्थान के समय श्री राम अयोध्या की माटी को अपने साथ ले जाना नहीं भूले। यही नहीं उन्होंने चौदह वर्षों के वनवास में प्रत्येक दिवस जब

उन्होंने अपने ईष्टदेव, गुरुदेव और माता-पिता की आराधना की तो कुटिया में ही उस पूजाघर में रखी अयोध्या की पावन मिट्टी की आराधना करना नहीं भूले। यही कारण है कि श्रीराम युवराज, एक साधारण तपस्वी से समग्र विश्व के महानायक, महापुरुष और भगवान् बन गए।

दूसरा उदाहरण मैं आपको और देना चाहूँगा। श्रीकृष्ण जी का चरित्र द्वापर में हमें यही प्रेरणा देता है कि वह जब बृज छोड़कर चले गए तब भी प्रत्येक दिन बृज की भूमि का स्मरण और गुणगान करना नहीं भूले। महाकवि सूरदास ने यह रचकर,"ऊधव मोहिं बृज बिसरत नाहीं" श्रीकृष्ण इसी मातृभूमि के गुणगान के कारण एक साधारण ग्वाले से जन-जन के हृदय सम्राट भगवान श्रीकृष्ण बन गये।

इसी संदर्भ में मैं भारत से हजारों कि.मी. की दूरी पर भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाले लाखों प्रवासियों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। ऐसे लोग विश्व के अनेक देशों में हजारों भारतीयों के रूप में दशकों से निरंतर निवास कर रहे हैं। कौन जानता है उन्हें? क्या हैं उनकी उपलब्धियाँ? क्या है प्रवासी भारतीयों के रूप में उनकी देन और उपलब्धियाँ? क्या धन के आधार पर कभी किसी भी देश में प्रवासी भारतीयों का मूल्यांकन हुआ है जो अब होगा? धन का दान-प्रदान तो क्षणिक है। केवल पैसे के द्वारा किसी देश की संस्कृति का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। निसंदेह एक ही शास्वत कार्य है और वह है साहित्य सृजन। जिस देश में भी ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी संख्या केवल गिनी-चुनी है। केवल और केवल ऐसे प्रवासी साहित्यकार ही अपने सृजनात्मक साहित्य के द्वारा अपने देश की भाषा और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाते हैं और विश्व पटल पर अपने देश की सर्वोत्मुखी पहचान अंकित करते हैं। निस्संदेह विश्वपटल पर ऐसे प्रवासी साहित्यकारों और उनके द्वारा सृजित साहित्य को सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। वह दौर और था और यह इक्कीसवीं सदी का दौर कुछ और है। विदेश में लोगों के अपने निजी जीवन में और सार्वजनिक जीवन में व्यवहार में समन्वय करना पड़ता है। भिन्नता है देश और व्यवस्था को लेकर। विदेश में रहकर वहां का जीवन दर्शन पढ़कर और स्वाभाविक रूप से परिचित होकर विदेशों में हम लिख रहे हैं। अपने साहित्य में मैंने दोनों दर्शनों का समन्वय किया है।

अनुपमा तिवारी : कुछ आलोचकों की यह धारणा अब तक बनी हुई है कि वास्तव में प्रवासी साहित्य दोयम दर्जे का साहित्य है। इस सन्दर्भ में आपका क्या कहना है?

सुरेश चंद्र शुक्ल: स्तर का साहित्य होना चाहिए। कोई भी साहित्य इसलिए केवल स्वीकृत नहीं हो जाना चाहिये कि वह प्रवासी द्वारा लिखा साहित्य है, वरन उस साहित्य को उत्कृष्ट और अच्छे स्तर का साहित्य होना चाहिये। मेरी दृष्टि में उसके कई कारण हो सकते हैं। मुझे भारत और विदेशों के शिक्षा और निजी संस्थानों के साहित्यिक सेमिनारों में भाग लेने का अवसर मिला और उन्होंने बहुत से सवाल उठाये वे आपके सामने रख रहा हूँ। विदेशों में जिन प्रवासी साहित्यकारों ने धार्मिक पात्रों पर पुस्तकें लिखीं जिन पर पहले से पुस्तकें थीं। इनका स्तर भी अच्छा नहीं था। अच्छी छपाई और कागज से छपी पुस्तक अच्छी पुस्तक नहीं हो जाती यदि उसमें अच्छा साहित्य नहीं है। विदेशी साहित्य की मान्यताओं के अनुसार जिसने केवल धार्मिक साहित्य लिखा वह साहित्यकार नहीं है। वह लेखक है। अनेक प्रवासी साहित्यकारों ने धार्मिक ग्रंथों के पात्रों पर आधारित कथाओं पर ज्यों का त्यों पुनः लिखा और इन्हें भारत में पुरस्कृत भी किया गया। इससे भी भारत के बहुत से रचनाकार स्तब्ध हुए कि उनसे कम स्तर का धार्मिक साहित्य पुरस्कृत और स्वीकृत किया जा रहा है। इससे प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य के स्तर पर सवाल उठना स्वाभाविक है।

भारत के बहुत से आलोचक और पाठक समझ नहीं पाये क्योंकि भारत में यदि ये प्रवासी साहित्यकार होते तो उनका स्वीकृत होना होना संभव न होता।

तीन लोग भारत सरकार से पुरस्कृत हुए इनमें दो तो अधिकतर धार्मिक साहित्य लिखते रहे और धार्मिक संस्था से जुड़े रहे और एक ने केवल भारतीय धार्मिक ग्रन्थ का अनुवाद किया। इन्हें भारत की बहुत प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण पत्रिका कल्याण के सम्पादकों से

सीखना चाहिये जो अनुवाद, भाषा टीका आदि करते रहे और आजीवन लेखन किया और कभी भी कोई पुरस्कार धर्म के लिए स्वीकार नहीं किया।

अनुपमा तिवारी : प्रवास में लेखन करने वाले कुछ साहित्यकार खुद को प्रवासी साहित्यकार कहे जाने से परहेज करते हैं. आपको लगता है कि यह परहेज उचित है ?

सुरेश चंद्र शुक्ल: क्या अंतर पड़ता है कि हम कान सीधे पकड़ें या घुमाकर। विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य को ही विशेषकर प्रवासी साहित्यकार कहा जाता है। यदि साहित्य का यह वर्गीकरण प्रवासी साहित्य को हाशिये में लाने के लिए किया जा रहा है तो मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। अध्ययन और शोध की दृष्टि से और समयकाल की दृष्टि से प्रवासी साहित्य नाम से मुझे परहेज नहीं है। प्रवासी साहित्य में धार्मिक साहित्य को कतई नहीं सम्मिलित करना चाहूँगा। प्रवासी साहित्य जिसे किसी धर्म प्रचारक और प्रचार के लिए गए प्रवासी, अपने को धार्मिक विषय पर साहित्य लिखकर साहित्कार का दर्जा पा रहे हैं। यह अन्याय है और खतरा है उन देशों के साहित्य में मुख्यधारा के प्रवासी साहित्यकारों के लिए जो अपने प्रवासी देश के साहित्यकार के साथ-साथ उस देश के साहित्य के अनुवादक भी हैं।

दूसरे शब्दों में मुख्यधारा के साहित्यकार मूल देश (भारत) और अपने नए देश जहाँ बस गए हैं, के बीच सेतु का भी काम करते हैं। इन साहित्यकारों को अपने नये देश में भी स्वीकृति है। यहाँ धार्मिक ग्रंथों पर लिखी रचनाओं को मुख्यधारा के साहित्य में नहीं माना जाता। ठीक उसी प्रकार जैसे वे अनुवादक और साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकते जो केवल बाइबिल और अन्य धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद और व्याख्या करने वाले हैं। पर खुले आम पिछले वर्षों में धार्मिक लेखकों के रूप में यह साहित्य अपने पूजाघरों या आस्था का साहित्य है। वह धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद करने वाला कैसे प्रवासी साहित्यकार बन गया? इसका मूल्यांकन समय करेगा। प्रवासी साहित्य में मेरे अनुसार अनुवादक वही कहलायेगा जिसने मुख्य साहित्यिक कृतियों; प्राचीन क्लासिक और आधुनिक साहित्य का अनुवाद किया हो। वह प्रवासी साहित्यकार नहीं हो सकता जो केवल धार्मिक रचनाओं का सृजन करता है। अपने लिए अपने धर्मावलम्बियों के लिए कोई क्या लिखता है यह उसका निजी मामला है पर वह मुख्यधारा का साहित्य नहीं है।

अनुपमा तिवारी : प्रवासी साहित्य भारत में लिखे जाने वाले साहित्य से कौन-कौन से दृष्टिकोण से कितना भिन्न है?

सुरेश चंद्र शुक्ल: वह प्रवासी साहित्य नहीं हो सकता जो केवल धार्मिक रचनाओं उनकी कथाओं पर लिखा गया है। जैसे भारत में धार्मिक चरित्र को लेकर महाकाव्य या उपन्यास। मेरी दृष्टि में प्रवासी साहित्य नए देश की स्थितियों और ठीक वैसा हो सकता है जैसे वहां के साहित्कार लिख रहे हैं बस यह भारतीय भाषा में लिखा साहित्य होता है।

भारत के लेखकों द्वारा लिखे गए विदेश पर साहित्य उतना सटीक और विश्वसनीय नहीं हो सकता जैसा की विदेश में रहने वाला प्रवासी साहित्यकार का रचा साहित्य हो सकता है। भारतीय लेखकों-अनुवादकों द्वारा लिखा साहित्य और अनुवाद भी उतना अच्छा और सटीक नहीं हो सकता जैसा कि नए देश की भाषा जानने वाला प्रवासी साहित्यकार कर सकता है। भारतीय अनुवादकों ने अधिकतर अनुवाद अँग्रेजी से किये हैं इसलिए उनके अनुवाद ज्यादा सफल नहीं हैं। अनुवादकों की कमी के चलते ऐसा ही चलता रहेगा। भारत में प्रायः आलोचकों और संकलनों के सम्पादकों पर पक्षपात और भाई-भतीजावाद के आरोप लगते रहे हैं । मुख्यधारा के प्रवासी लेखकों को अन्थोलॉजी और आलोचना ग्रन्थ पर कार्य करना चाहिये।

अनुपमा तिवारी : शरद आलोक में भारत और नार्वे की संस्कृति रग-रग में रची-बसी है. संस्कृतियों के सम्मिश्रण में आपने क्या खोया और क्या पाया?

सुरेश चंद्र शुक्ल: अनुपमा जी, व्यक्ति जहाँ रहता है वहाँ घुल-मिल जाता है जो इंटेग्रेशन के लिए भी बहुत आवश्यक है। बच्चों की शिक्षा और जीवनयापन के लिए भी जरूरी है उस समाज में घुलना-मिलना जहाँ आप रह रहे हैं। अब तो यह देश भी हमारा है।

यहाँ मैं पत्रकार के रूप में कार्यरत हूँ। यहाँ मुझे लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता और राजनैतिज्ञ के रूप में स्वीकार किया था और नगर पार्लियामेंट में चुना गया था। मैं नार्वे को भी उतना ही अपना देश मानता हूँ जितना भारत को। भारत मेरी जन्मभूमि और नार्वे मेरी कर्म भूमि है। जैसे भारत मेरी यशोदा माँ है और नार्वे मेरी देवकी माँ है। मैं आजीवन यहाँ रहूँ भी तो भारतीयता छोड़ नहीं सकता और पूर्ण रूप से नार्वेजीय हो नहीं सकता।

अनुपमा जी, आप जब एक चीज प्राप्त करते हैं तो कई बार आपको दूसरी चीज को खोना भी पड़ता है बेशक यह खोना चाहे अनुभव का हो। नार्वे में रहकर हम शारीरिक रूप से भारत में नहीं हैं। जब यहाँ मानवीय और तकनीकी तथा दूरगामी दृष्टि और समानता का भाव देखता हूँ तो मेरे मन में कई बार सवाल उठते हैं? काश भारत के सभी बच्चे नार्वे के बच्चों की तरह वह सारी सुविधायें और अवसर पाते? भारत में भूख से और कुपोषण से मरने वालों की संख्या लाखों में क्यों है। साथ में यह भी देखता हूँ कि नार्वे में बच्चों को यहाँ के मौसम, भविष्य में आने वाले समय के हिसाब से सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा दी जाती है। उन्हें समाज-दुनिया से जूझने और उसमें रहने के लिए मजबूत बनाया जाता। मैंने यहाँ नार्वे में बहुत कुछ सीखा और पश्चिम के साहित्य और कला से परिचित हुआ हूँ और उसका हिस्सा भी बन गया हूँ। मैंने नार्वे में खोया भी और बहुत पाया भी है। नार्वेजीय भाषा से हिन्दी में साहित्य और समाचारों के अनुवाद किये हैं। अपने नये सभी हिन्दी नाटकों में नार्वे में भारतीयों का अंतर्द्वन्द् सामाजिक और सांस्कृतिक टकराव और चुनौतियों को रोचक बनाकर प्रस्तुत करने का अवसर मिला। इन नाटकों (अन्तर्मन के रास्ते, वापसी, अन्ततः, डेथ ट्रैप, सरहदों के पार और आधी रात का सूरज) के द्वारा अवश्य ही नार्वेजीय समाज का एक प्रतिबिम्ब उजागर होता है। इन नाटकों का सृजन यहाँ रहकर लेखन करने के कारण ही संभव हुआ जिसे मैं कह सकता हूँ कि यह मैंने और हिन्दी साहित्य ने पाया है।

अनुपमा तिवारी : प्रवासी साहित्य में कथा और काव्य लेखन की बहुलता है. जबकि आलोचना और निबंध लेखन की स्थिति शून्य है। इसकी वजह क्या हो सकती है?

सुरेश चंद्र शुक्ल: कहानियाँ मनुष्य को बचपन से लुभाती रही हैं। माँ से सुनी कहानियां या किस्से, मनगढंत बातें आदि. विदेशों में पुस्तकालयों में कहानियों की पुस्तकों का आसानी से पढ़ने के लिए सुलभ होना और पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों का प्रकाशन आदि इसका कारण रहा है। कविता को प्रायः गेय कहा जाता है पर जरूरी नहीं है। कहानी मेरे दृष्टि में कविता से अधिक रोचक होती है. इसीलिये कविता से अधिक कहानी के पाठक होते हैं। ऐसा नहीं है कि प्रवासी लेखकों ने कवितायें नहीं लिखीं। अमेरिका और यूरोप के बहुत से रचनाकारों ने पहले कविता ही लिखी और बाद में कहानी लिखने लगे। बहुत से लोगों ने कवितायें लिखी हैं पर वे आज तक प्रकाश में नहीं आ पाये या नहीं लाये गये।मैंने कुछ निबंध हिंदी पर लिखे हैं। मैंने विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों पर और अनेक विषयों पर विषयों पर लेख और संस्मरण लिखे हैं अपेक्षाकृत निबंधों के।

अभिव्यक्ति नेट पत्रिका में मेरे संस्मरण महादेवी वर्मा जी और हजारी प्रसाद द्विवेदी जी पर वर्षों पहले प्रकाशित हो गए थे। मैंने फ़िल्मी कवि-गीतकारों पर मेरे अनेक संस्मरण लिखे हैं जिनमें मजरूह सुल्तानपुरी, गोपालदास नीरज, योगेश गौड़, कथाकार जैनेंद्र कुमार, कमलेश्वर, राजेंद्र अवस्थी, गंगा प्रसाद विमल, विनोद चंद्र पांडेय आदि मुख्य हैं। आज प्रवासी साहित्य के आलोचक वे हैं जिन्हें भारतीय साहित्य पर ही कार्य करना चाहिये। इन आलोचकों ने प्रतिनधि प्रवासी साहित्य को बहुत पीछे धकेल दिया है अपने चेहेतों को बड़े लेखक दिखाने की भूख में। किसी आलोचक के आर्थिक कमाई के मैं खिलाफ नहीं हूँ पर आलोचक को निष्पक्ष होना चाहिए कर्ता भारत में भी अनेक कहानियों और कविताओं के संकलन आये पर वे अधूरे के अधूरे रह गए हैं। बेशक उसे साहित्य अकादमी ने क्यों न प्रकाशित किया हो। कुछ आलोचक अपने प्रकाशन चलाने के कारण वह उन लेखकों से बँध गए हैं जिनकी पुस्तक उन्होंने प्रकाशित की है।

हिन्दी आलोचना का नुकसान राजनैतिक प्रतिनिधियों ने हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओँ का किया है, क्योंकि जो कार्य और सम्मेलन के आयोजन की बहुत अच्छी तैयारी से संपन्न होने वाला होता था उनमें अन्त में उन हिन्दी के विद्वानों को हटाया जाता जो उस सम्मेलन के सूत्रधारों में और उसके मूल में होते थे। बहुत से विश्व हिन्दी सम्मेलन इसके उदाहरण हैं जिसमें केवल दिल्ली का वर्चस्व और उन लोगों का वर्चस्व होने दिया जाता है जो हिन्दी सम्मेलन की शुरुआती दौर में योजना और उद्देश्यों से नहीं जोड़े जाते थे।विदेशों के सही आलोचकों को विश्व हिंदी सम्मेलनों में नहीं जोड़ा गया जबकि भारतीय दूतावासों ने इसकी सिफारिश की थी। एक लेखक मुझसे सन 1982 से जुड़े और नार्वे से प्रकाशित पत्रिका परिचय को प्राप्त करते रहे। उनके साथ मैनें तीन महीने साप्ताहिक हिन्दुस्तान में काम किया। उन्होंने स्वयं और दूसरों से मेरी पुस्तक की समीक्षा भी करायी। मेरे कहानी संग्रह की भूमिका पूर्व साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पद्मभूषण गोपीचंद नारंग जी ने लिखी थी।

जैनेन्द्र कुमार जी और राजेंद्र अवस्थी जी मेरी कहानियों के प्रशंसक थे। गोपीचन्द नारंग जी मुझे कवि से ज्यादा कहानीकार मानते हैं। नाटककार विलायत जाफरी मेरे अन्दर लेखक मजदूर देखते हैं। जिसकी जैसी दृष्टि वैसा वह देखता है। कमलेश्वर जी ने 2004 में मेरी दो अनुवाद की पुस्तकों 'नार्वे की लोककथाएं' और डेनमार्क के एच सी एंडरसन की कथायें का विमोचन किया था जिसकी भूमिका साहित्य अकादमी के सचिव जी ने लिखी थी। कमलेश्वर जी ने डेढ़ पेज की मेरी तीन कहानियों की समीक्षा मुझे दी जिसके लिए लेखक विक्रम सिंह जी का आभारी हूँ। ये जिक्र जरूरी है यह जानने के लिए कैसे सही कहानियों को आलोचक या सम्पादक जगह नहीं देते इन्हें नार्वे से सीखना चाहिए जहाँ लेखक की कृतियों और रचनाओं से भेदभाव नहीं किया जाता। जबकि उस लेखक की मूर्तियां नहीं लगने दिया जाता व्यक्तित्व अच्छा नहीं रहा। नार्वे में लेखकों ने नोबेल पुरस्कार विजेता क्नुत हाम्सुन की मूर्ति ओस्लो में नहीं लगने दी क्योंकि वह नाजी समर्थक हो गया था। क्नुत हाम्सुन की भाषा चमत्कारिक है। साहित्य उच्च कोटि का है। लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व को अलग-अलग देखा जाना चाहिये। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित दो कहानी संकलनों में मेरी कोई कहानी नहीं है, ध्यान देने वाली बात यह है कि इसके सम्पादक कमलेश्वर जी अन्य संकलन के दूसरे सम्पादक मेरी कहानी पढ़कर पत्रों द्वारा कहानी की प्रशंसा करते रहे हैं। संस्मरण में मैंने इसका जिक्र किया है।

अनुपमा तिवारी: आप एक प्रतिष्ठित लेखक हैं। रोजगार की दिशा में हिन्दी का भविष्य कितना उज्जवल है?

सुरेश चंद्र शुक्ल : अनुपमा जी यह प्रश्न बहुत जरूरी और सामयिक है। हिन्दी रोजगार की भाषा उसी तरह है जैसे अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल और पत्रकारिता। पर दुःख की बात है कि हिन्दी के अधिकांश विद्यार्थी और अध्यापकगण हिन्दी को गंभीरता से नहीं लेते हैं। शायद मैं गलत हो सकता हूँ पर जिनसे मैंने बात की है उस आधार पर कह सकता हूँ। मैंने समाचार पत्र में पढ़ा तो बहुत दुःख हुआ कि लाखों बच्चे उत्तर प्रदेश और बिहार में हिन्दी में फेल हुए। उत्तर प्रदेश में पिछले वर्ष दसवीं और इंटरमीडिएट में दस लाख विद्यार्थी फेल हुए थे। मुझे नहीं लगता इस पर हम गर्व कर सकते हैं। इस लॉकडाउन में हम और हमारे बच्चे अपनी माँ, और बुजुर्गों से हिन्दी के गीत, कहानी, भाषा सीख सकते थे। मुहावरे सीख सकते थे। स्थानीय लोक भाषा/बोली सीख सकते थे। पत्रकारिता के गुर सीख सकते थे। समाचारपत्रों में छपी हिंगलिश और खराब हिन्दी ने भी हिन्दी का नुकसान किया है।

हिन्दी अब पहले से अधिक रोजगार की भाषा है यदि आपको अच्छी हिन्दी आती है। उसका अच्छा ज्ञान है। आप अच्छे निबंध लिख लेते हैं। आप अच्छे अनुवादक और कम्प्यूटर का अच्छा ज्ञान रखते हैं। आपके लिए नौकरी है यदि आप हिन्दी के माध्यम से बेसिक और तकनीकी शिक्षा दे सकते हैं। मैंने हिन्दी के विद्यार्थियों को हिन्दी के प्रति उदासीन देखा है। वह इतना परिश्रम करके ज्ञान अर्जित नहीं करते जितना करना चाहिए। हिन्दी को सुधारकर लिख सकते थे अपने माता-पिता और बुजुर्ग की सहायता से।

हमको स्वयं कोशिश करनी होगी आगे बढ़कर। हाथ पर हाथ रखकर नहीं। यहाँ कोई सेंटा क्लॉज नहीं आयेगा जो आपको भारतीय फिल्मों की तरह सभी सुख साधन और नौकरी घर बैठे दे जाएगा। हिन्दी के विद्यार्थियों को खुद साबित करना पडेगा कि वह हिन्दी में अच्छी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। वह रोज घंटों हिंदी का साहित्य व ज्ञान की पुस्तकें अन्य भाषाओँ में भी पढ़ते हैं। अधिकाँश हिन्दी के विद्यार्थी मेरी दृष्टि में उतना परिश्रम और लगन से हिन्दी नहीं सीखते जितनी लगन से अन्य विषयों जैसे विज्ञान, अंग्रेजी और गणित सीखते हैं। अब भाषा की प्रवीणता पहली शर्त है। इसका कारण अध्यापक और समाज में हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओँ के प्रति उदासीन होना। जो अपनी मातृभाषा में प्रवीण नहीं है वह अन्य भाषा में ज्यादा प्रवीण नहीं हो सकता। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार मातृभाषा में बेसिक शिक्षा बच्चों का अधिकार है।

अनुपमा तिवारी: आज के परिप्रेक्ष्य को देखें तो, अनेक साहित्यकार अपने लेखन की धाक जमाने के लिए साहित्य लेखन की और उन्मुख हुए हैं। यह जानने की जिज्ञासा है कि यह साहित्यलेखन जीविका निर्वाह का साधन भी बन चुकी है?

सुरेश चंद्र शुक्ल: अनुपमा जी आपने सही प्रश्न किया। पुस्तक लेखन दोनों धाक जमाने और आजीविका दोनों का साधन है। सुरेंद्र मोहन पाठक जी को आज भी प्रकाशक पहले पैसे देते हैं पुस्तक लिखने के लिए। एक तरफ आज जहाँ पुस्तक की बिक्री भी ख़ास नहीं है और गुणवत्ता के बारे में मानकों का अता-पता नहीं। पहले जब मैं यहाँ नार्वे में साहित्यिक लेखकों की संस्था में सदस्य बना था तब मुझसे दो अपनी छपी पुस्तकें भेजने को कहा गया था. लेखकों की एक समिति होती थी जो गुणवत्ता की जांच करती थी, तब सदस्य बनते थे। इस तरह यहाँ अच्छी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अभी इस नार्वेजीय लेखक सेंटर ने साहित्य के अलावा अन्य विधा के लेखकों को सदस्य बनाना शुरू किया है। मैंने सुना है कि भारत में कुछ प्रकाशक पैसे देकर प्रसिद्द लेखक के नाम ठेके पर पुस्तकें लिखाते थे। यह खुलासा किया है प्रसिद्द लेखक सुरेंद्र मोहन पाठक ने एक टीवी साक्षात्कार मे। सुरेंद्र मोहन पाठक की एक पुस्तक भारत में एक करोड़ बिकी थी, जिनकी आत्मकथा आसानी से रेलवे स्टेशनों की बुकस्टाल में मिल जाती है। पाठक जी का कहना है कि वह पुस्तकों के लेखन द्वारा धन कमाना चाहते हैं। अभी भी लेखन से जीवन निर्वाह किया जा सकता है। हिन्दी में तकनीकी, कलाओं और पाठ्यक्रम की स्तर की पुस्तकों का अभाव है। अधिकाँश हिन्दी समाचार पत्रों की हिन्दी में गिरावट आयी है। अतः जो लेखक और पत्रकार हिन्दी में प्रवीण होगा और अंगरेजी का जानकार होगा वह नेट पर अपने अखबार निकाल सकता है। प्रयास करने की जरूरत है। आने वाले समय में वेब पत्रिकायें और पुस्तकों का चलन बढ़ेगा। इससे लेखन द्वारा जीविका निर्वाह हो सकता है।

अनुपमा तिवारी : भारत में आजीविका के लिए संघर्षरत युवा पीढ़ी के लिए क्या सन्देश देना चाहेंगे?

सुरेश चंद्र शुक्ल: देश के सामने गभीर समस्याएं हैं ये सबसे पहले युवाओं को ही प्रभावित करेंगी। देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा था कि युवाओं के कन्धों पर देश का भार होता है। युवाओं को मेरी तरफ से कुछ सन्देश या मन्त्र कह लीजिये दे रहा हूँ जो मैंने संघर्ष करके और परिस्थितियों से सीखा है। ये मेरी अपने संघर्ष से सीखी हुई बाते हैं:

(1) अपनी मातृ भाषा, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओँ में बहुत प्रवीण हों। भाषा संवाद का माध्यम होती है। भाषा, उसके मुहावरे, उसके लोकगीत, कहानियां, उक्तियाँ आप अपने-माता-पिता, दादी, दादा या पड़ोस के दादा दादी, हाकर, रिक्शेवाला, मजदूर सभी को कुछ न कुछ अपनी बोली भाषा में आता है, जो हो सकता है कि आपको नहीं मालुम हो। इसका एक कारण यह हो सकता है कि जो हमारे पास होता है उसे हम नहीं देख पाते। यदि आप अपनी भाषा हिन्दी में प्रवीण/एक्सपर्ट हो गए और एक विदेशी भाषा अच्छी तरह आ गयी तो आप अनेक कार्य कर सकते हैं।

(2) युवाओं से एक बात कहना चाहता हूँ कि युवा एक स्वतन्त्र व्यक्ति है, किसी की संपत्ति नहीं हैं, चाहे वह समाज या देश ही क्यों न हो।

(3) आप बहुत परिश्रमी हों, मौसम के हिसाब से अपने आपको ढालें। कोई काम छोटा बड़ा नहीं होता है। सफ़ेद कॉलर नौकरी में भी आपको बहुत कुछ स्वयं करना होगा। हस्तकला सीखें और प्रायोगिक तकनीकी शिक्षा प्राप्त करें। (जैसे आपको थोड़ा बढ़ई का काम, पेन्टिंग, खाना बनाना, बागवानी करना आना चाहिए।) अब लेखन के कार्य के साथ दूसरे भी कार्य करने होंगे। जैसे आज अनेक अखबारों में सम्पादक को सम्पादन के साथ-साथ अन्य कार्य करने पड़ते हैं जैसे फोटोग्राफी, कम्पोजिंग/टाइपिंग, लेआउट और मैनेजमेंट आदि। अब तो पत्रकार को अपने समाचार पत्र और पत्रिका को वेब पर प्रकाशित करना आना चाहिए। इसके लिए उसे कंप्यूटर और प्रकाशन सम्बन्धी प्रोग्राम की जानकारी भी होनी चाहिए। समय के साथ ज्ञान को अपडेट करें।

(3) युवा को निशुल्क काम नहीं करना है। आपको कोई बांड के बदले या उधार काम कराये उसे भी मना कर दें यह और बात है कि आप दिव्यांगों की मदद करें या किसी को रास्ता या मार्ग बता दें। बीमार और घायल को अस्पताल पंहुचा दें। जो आपको आपके काम के पैसा नहीं दे रहा है उसने आपके कार्य का सम्मान नहीं किया है।

(4) आप कामदाता बनें न कि काम लेने वाले। नौकरियाँ आपको पैदा करनी होगी, अकेले या मिलकर। स्वावलम्बी बनें। आत्मनिर्भर होकर किसी भी कार्य का संचालन स्वयं करें और विश्वास पैदा करें।

(5) खाली समय में लोगों को साक्षर बनायें क्योंकि समाज में जितनी साक्षरता आयेगी तो उससे समाज का स्तर बढ़ेगा और भ्रष्टाचार कम होगा और शिक्षा देने से आपमें नेतृत्व क्षमता आयेगी और आपके संपर्क का दायरा (नेटवर्क) बढ़ेगा। साक्षरता यानि प्रौढ़ लोगों को शिक्षा देने से आपके पास शिक्षा देने का अनुभव (एक्सपीरियंस) होगा। आधुनिक समय में केवल आपके अनुभव भी देखे जाएंगे केवल प्रमाणपत्र नहीं देखा जाएगा।

(6) युवाओं को भावनाओं में नहीं बहना है उन्हें प्रायोगिक और दूरदर्शिता से कार्य करना है। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। लोगों ने देखा की एक आदमीं गाय को डंडे से मार कर दूर भगा रहा था. कुछ लोगों ने देखा कि वह गाय को मार रहा है तो कुछ लोग उस आदमी पर झपट पड़े और उसके साथ धक्कामुक्की करने लगे। उसने बताया कि उसके सब्जी की दूकान है और गाय उसकी सब्जियाँ खा गयी और वह उसे दूकान से हाँक कर दूर कर रहा था। तब लोगों को समझ में आया. ('गाय के वास्ते' मेरी एक कथा है जिसमें इसका वर्णन है।)

(7) अपने मूल्यों और आदर्श का खुद निर्धारण करें। हमेशा दूसरे के पीछे न चलिए, अपितु अपने रास्ते स्वयं बनायें।

(8) साम्प्रदायिकता से बचें।

(9) नौकरी के लिए घूस और किसी भी शेयर बाजार में युवा पैसे नहीं लगायें क्योंकि शेयर बाजार किसी भी वस्तु का उत्पादन नहीं करता।

युवाओं को स्वयं नेतृत्व और अपने आदर्श स्वयं स्थापित करने होंगे तभी ईमानदारी से वह स्वयं का और अपने समाज और देश का विकास कर सकेंगे। इन सभी बातों का जीविकोपार्जन में बहुत लाभ मिलेगा। दिन पर दिन प्रतियोगिता बढ़ रही है और उसी से आई चुनौतियां भी।

ISSN : 2583-2948